बेतरतीब

अल्पना मिश्र

हिन्दी ADDA

बेतरतीब

'हे कर्णधारो! अपने माँ-बाप को प्रथम पुरुष की तरह देखो। सत-असत का विवेक तभी संभव है।'

इस आप्त वाक्य से प्रेरणा लेकर, कर्णधारों में अपने को मानते हुए हमने अपने माँ-बाप का जीवन परिक्षालन करना शुरू किया। हम चार जने यानी तीन लड़कियाँ और एक अकेला लड़का। इसी लड़के के इंतजार में हम तीन जने इस दुनिया में आ टपके थे। इसी का इंतजार न होता तो कब का दो पर स्टाप लग गया होता। तीसरी महारानी जी भी न आतीं। अब आ गए हैं तो कुछ न कुछ खुराफात करेंगे ही। लड़का निर्लिप्त है। शायद कभी वह भी इस तरफ सोचे। फिलहाल नहीं सोचता। हमीं तीन अक्ल के मारे हैं। कहने को तो हम तीन पर लिखने की यह जिम्मेदारी सीधे-सीधे मेरे सिर पड़ी। बाकी दोनों तो लौट गईं। मेरे ही दिल में खलबली। सो कुछ भी कहने के पहले अपनी तरफ से साफ-साफ कह दूँ कि हमारे माँ-बाप दुनिया के किसी भी माँ-बाप से कम सुंदर, कम महान नहीं हैं। वे हममें हैं। हमारी पीढ़ी दर पीढ़ी में हैं। उन्हें प्रथम पुरुष की तरह देखना क्या कम कष्टदायक है? मानो अपने ही अंग को काटकर निहारना कि कैसा है वह!

तो जब-जब हम उन्हें झाड़-पोंछकर ठीक-ठीक देखने की कोशिश करते, आँखों में दरार पड़ जाती। हम कुछ महान और बड़ा देखना चाहते थे पर कुछ ठीक से दिखता ही नहीं, जो दिखता, उसमें से कुछ हम मानने को तैयार न होते। कोई बड़ी घटना खोजकर लाना चाहते पर जो हाथ आता वह बहुत छोटा और सामान्य होता।

बीच में रोड़े भी थे कुछ।

कुछ हमारे अंतरविरोध, कुछ उनके।

कुछ हमारे मोह, कुछ उनके।

कुछ उनकी अतृप्त आकांक्षाएँ, कुछ हमारी।

इतने-इतने ठीक से न पढ़े जानेवाले अध्याय।

जैसा हमने अब तक देखा था, कभी बिल्कुल वैसा लगता।

जैसा हमने पहले कभी नहीं देखा था, कभी वैसा।

बहुत कुछ जो हमारे दिमाग के कंप्यूटर ने फीड नहीं किया था, छूट गया।

हठ करके जो पाया, वह बेतरतीब-सा कुछ है।

अमृतवाणी -

वत्स! ये तमाम-तमाम तुच्छ बातें इस विराट जीवन में लीन हो जाती हैं। ये, वो... सारे क्षण जीवन में जुड़ते जाते हैं, छिटककर अलग नहीं होते। तो यह जीवन समृद्ध ही बनता है, क्षुद्र नहीं।

तथास्तु!

दर्द की सुनसान तस्वीरें...

वे यानी श्री भगवतशरण जी और उनकी पत्नी रत्नाशरण जी, न परेशान हैं, न हैरान। बल्कि हम परेशान हैं कि वे अकेले हैं। हम हैरान हैं कि जिस तरह हम सोचते रहे, जिस तरह चिंतित होते रहे, सिर्फ उन्हें लेकर, वे नहीं थे। सोचना नहीं चाहते थे या सोच नहीं पाए, जो भी हो, नहीं सोचे।

हम सोचते थे। सोचते क्या थे, भयभीत थे कि जब हम सब दूर होंगे और ये दो प्राणी अकेले हो जाएँगे, तो क्या होगा? शायद जब तक हम लौटेंगे, दोनों अलग-अलग मरे पड़े मिलेंगे। हम अंदर के कमरे में रत्ना जी की और बैठक में भगवतशरण जी के मृत शरीर की कल्पना कर लेते। हमारा यह विचार हमें दहशत से भर देता और हम जी भर कोशिश करते कि वे दोनों अकेले न रहने पाएँ। पति-पत्नी के किसी भी संबंध से परे हम यही चाहते थे और बहुत शिद्दत से चाहते थे। कभी-कभी उन्हें देखकर लगता कि वे दोनों मरने की दौड़ में शामिल हैं। 'पहले मैं, पहले मैं' की तर्ज पर व्यथित होकर एक दूसरे को यातना देते रहते हैं। यातना जितनी गहरी होती है, उनका संघर्ष उतना बढ़ जाता है।

यातना, संघर्ष और उसके भीतर कहीं छिपे पड़े सुख के इस आपसी रिश्ते को हम बचपन में नहीं पहचान पाते थे।

आज जब हम तीनों ने प्राइवेट कंपनियों को अपना श्रम और समय बेचते हुए पैसा कमाना शुरू कर दिया, भाई मैनेजमेंट का प्रोफेशनल कोर्स करने मुंबई चला गया, तो उन्हें अकेले न छोड़ने की हमारी सारी कोशिश नाकाम हो गई।

रत्ना जी को डॉक्टर ने दूर तक टहलने की सलाह दी है। वे नियमित टहलने जाती हैं - अकेले। भगवतशरण जी पहले से ही नियमित टहला करते थे - अकेले।

घर में कुछ मँगाना हो तो रत्ना जी भगवतशरण जी को लक्ष्य किए बिना मानो अपने आप से कुछ इस तरह कहतीं - 'सब्जी नहीं है।' और छत पर चली जातीं या टहलने निकल जातीं। ठीक उसी समय भगवतशरण जी उन्हीं के पीछे टहलते हुए दूर

सब्जीमंडी तक जाते और सब्जी लेकर लौटते। सब्जी का झोला वे अंदर वाले बरामदे में रख देते। रत्ना जी लौट आने पर अपने आप समझ जातीं। या फिर भगवतशरण जी अपने आप से कहते - 'सब्जी है। कटहल कटे हुए मिल गए।' और वे रुकते नहीं, बगल में पड़ोसी के यहाँ बतियाने चले जाते। या फिर वे इसका ठीक उल्टा करते। कई दिनों तक सब्जी नहीं लाते। रत्ना जी नहीं बोलतीं। वे शाम को टहलते समय चौराहे के सब्जी ठेले पर से पिलपिले टमाटर खरीदतीं या गले मटर या भिंडी। इन सड़ी सब्जियों को वे बिल्कुल पसंद नहीं करतीं। वे सब्जीवाले को बार-बार समझातीं कि सड़ी सब्जियों, फलों को खाने से कुछ भी हो सकता है - एड्स भी। सब्जीवाला सिर हिलाता जाता। वह रोज सब्जीमंडी तक जाना चाहता था, नहीं जा पाता। वे भी सब्जीमंडी तक जाना चाहती थीं, पर खराब गड्ढेवाली सड़क के कारण जाना टालती रहतीं।

भगवतशरण जी सब्जी नहीं लाते तो रत्ना जी जैसे-तैसे एडजस्ट करतीं। कभी बेसन पकाकर सब्जी बनातीं, जो उनके और भगवतशरण जी के हाजमे के लिए नुकसानदेह होती। कभी दाल में खटाई डालकर काम चलातीं, जो उन्हें और भगवतशरण जी को बहुत बुरी लगती। पर वे खाते और इंतजार करते। इस इंतजार की इंतहा पर वे सब्जी लाते और उसी तरह कहते - 'सब्जी है। मटर सस्ते थे।' फिर बगल में मास्टर साहब के यहाँ बतियाने चले जाते।

बोलना कम, जताना ज्यादा।

मानो एक ही युद्ध में हारे हुए दो योद्धा।

वे कहतीं - 'पापा पहले अपने कपड़े-पैसे ताले में बंद करके रखते थे। अब ये हालत है?'

मतलब क्या?

मतलब कि अब भगवतशरण जी अपने कपड़े तह तक नहीं लगाते, न ही उस खुली अलमारी में रखते हैं, जो रत्ना जी ने सुविधा के लिए उनके नाम कर दी थी। कपड़े उनके कपड़ेवाले स्टैंड पर ही टँगे रहते, एक के ऊपर एक। हम अपनी तरफ से जो कपड़े और स्वेटर लाते, उसे वे केवल हमारा मन रखने के लिए उसी दिन पहनते, फिर वह सब पड़ा रह जाता। रत्ना जी हमसे कहतीं - 'देखते हो तुम लोग, म्लेच्छ बने घूमते रहते हैं।' हम कोशिश करते कि वे अपनी म्लेच्छता से निकलें। कभी हमारी कोशिश कामयाब होती, कभी नाकाम।

भगवतशरण जी को कहीं जाना होता, शहर से बाहर, तो पता चलता, ले जानेवाले उनके कपड़े गंदे पड़े हैं या धुलने को दिए गए थे, आए ही नहीं। या फिर ऐसा होता कि गंदे कपड़े ऐन दिन शाम को धोये जाते और जाने के समय तक सूखते नहीं, फिर ले आयरन उन पर मारा जाता। रत्ना जी बड़बड़ाकर आयरन करतीं। इस बड़बड़ाने और आयरन करते जाने में परितोष का जो भाव उनके चेहरे पर उभरता, वह अद्‌भुत होता। जिसका अर्थ होता - अच्छा है कपड़े गंदे रहे गए, अब ले जाओ गंदे कपड़े या बच्चू अब आई अकल ठिकाने! किसके भरोसे साफ आयरन किए कपड़े लेकर जाओगे। पहले तो छूने तक नहीं देते थे। लांड्री से धुलवाते थे। अब क्यों नहीं कर लेते। जाओ खर्च करो पैसा... लेकिन नहीं, लड़कियाँ पैदा की हैं तो बचाओ पैसा... खत्म हो गई सारी हेठी... मुझसे हेठी... आदि आदि।

तब भी, कोई दिन ऐसा नहीं होगा जब भगवतशरण जी अपने कपड़े, साबुन, तौलिया लेकर बाथरूम में नहाने गए हों। वे अपना निकर कंधे पर रखे बाथरूम में घुस जाते, फिर निकल आते -

'मेरा नेकर कहाँ है भाई?'

वे गुस्साते।

'कोई कपड़ा खोजो तो मिलता नहीं इस घर में!' बड़बड़ाते।

उनका हाथ अचानक कंधे पर जाता - 'धत् तेरे की!' निकर हाथ में लेकर दुबारा कंधे पर टाँगते। फिर बच्चों से साबुन माँगते। हममें से कोई उठकर अंदरवाले बरामदे की रैक पर से उनका वाला साबुन देता। वे फिर बाथरूम में जाते और निकल आते।

'मेरी तौलिया कहाँ है?'

हममें से फिर कोई उनकी रैक पर से तौलिया लाकर देता। तब कहीं जाकर वे नहाने जाते।

साबुन बरामदे की रैक पर रहता। हम सब साबुन वहीं से लेकर नहाने जाते और वापस लाकर वहीं रखते। बाथरूम में रैक लगवाने की कोशिश नहीं की। भगवतशरण जी ने भी नहीं।

मानो घर रत्ना जी का न हो।

भगवतशरण जी का भी नहीं।

घर, तब भी घर बना रहता है!

रत्ना जी धीरे बोलतीं, भगवतशरण जी तेज। जब वे जोर से आवाज लगाते तो सारा मोहल्ला जान जाता कि वे खेत से भुट्टा ले जाने को कह रहे हैं। खेत क्या था, मकान के पीछे इतनी खाली जगह थी कि उसमें कभी भुट्टा, कभी सब्जियाँ, कभी थोड़ी अरहर उगा ली जाती। उगा क्या ली जाती, भगवतशरण जी उसी में लगे रहते और अंततः उगा ही लेते। तो वे चाय कब पीते हैं, बाजार कब जाते हैं, कब अपना निकर खोज रहे हैं, कब नहाने के लिए साबुन माँग रहे हैं... यह सब किसी से भी पूछा जा सकता था।

रत्ना जी अपने पड़े रह गए कपड़े हमें ही वापस देने लगतीं, जिसमें ब्लाउज, गाउन के कपड़े या फिर फॉल न लग पाई साड़ियाँ होतीं। मजबूरन मैं या मुझसे छोटी उन्हें सिलवाकर, ठीक करवाकर उन्हें जबरन दे देते। वैसे सच पूछो तो हमारे पास इन सब कामों के लिए अब वक्त नहीं रह गया था। वे लोग क्या इतना भी नहीं कर सकते!

'सिलवा क्यों नहीं लाते? किसी ने मना किया है?'

अपना हाल नजरअंदाज करके वे कहते।

'कह दो पापा से उनकी चाय रखी है।'

रत्ना जी को यदि भगवतशरण जी को कुछ देना हुआ तो वे बच्चों के माध्यम से कहतीं। यहाँ तक कि चाय, पकौड़े, खाना आदि वे हमसे कहतीं। यह पहले की बात थी। अब इसकी जरूरत नहीं रह गई। अब तो 'चाय' कहना ही काफी है। बहुत खास और जरूरी मौकों पर ही वे भगवतशरण जी से सीधे बोली हैं। उनके दुख अथाह हैं। जब सुनाती हैं, समुद्र का छोर नहीं मिलता। जब शादी होकर आई थीं, तब के दुख। जब बच्चे पैदा हुए थे, तब के दुख। जब सारा काम निपटाकर, सबको खिलाकर खाने बैठतीं तो जगदीश्वरी (दादी) कहतीं - 'पतंगे आने लगेंगे, लाइट बंद कर दो।'

लाइट बंद कर दी जाती और वे अँधेरे में टटोल-टटोलकर खातीं।

उन्हें न गिने जाने का दुख।

मैंसेज के भीषण रूप धारण करे लेने पर भी डॉक्टर तक न पहुँचाए जाने का दुख। ऐसे में मृत्यु के सन्निकट होने पर संयोगवश किसी पड़ोसी के हस्तक्षेप से डॉक्टर द्वारा बचा लिए जाने पर, बचे रह जाने का दुख।

जगदीश्वरी (दादी) के बिस्तर पकड़ने पर, महीनों गंदा साफ करते रहने पर भी भगवतशरण जी की व्यंग्योक्तियों का दुख।

जगदीश्वरी (दादी) के बिस्तर पर बैठे-बैठे उनके हाथ की बनी रोटी धुलवाकर खाने का दुख।

उनके मर जाने पर भगवतशरण जी के जीवन बीमा पालिसी खरीदते जाने का दुख...

अपने ही आदर्शों और आशाओं का दुख...

फिर भी यह सच है कि हम बचपन में रत्ना जी को अधिक पसंद नहीं कर पाते थे। उनका उदास चेहरा और तटस्थ व्यवहार। बड़े होते-होते सत्य कथाओं ने हमें उनके प्रति सहानुभूति से भर दिया। हम उनका पक्ष लेते थे पर कहीं भीतर तक उनके द्वारा भगवतशरण जी की उपेक्षा हमें चुभती थी। हम भगवतशरण जी का भी पक्ष ले लेते थे।

हम पुल थे।

जिस पर से वे जब चाहते, गुजर जाते।

अकेले या साथ-साथ।

हम पुल बनने से इनकार नहीं कर सकते थे।

हम इस रोल में फिट कर दिए गए थे।

हम इसे बहुत बाद में जान पाए।

यही, कि हम जो थे, वह टूटकर बिखरने के लिए ही था।

कलछुल पर टँगी पृथ्वी और स्वप्न में गुझिया -

भगवतशरण जी पुरानी बातें नहीं करते। बल्कि पुराना प्रसंग निकलने पर या तो उठकर चल देते या कोई दूसरी बात करने लगते। जिसे रत्ना जी 'बात टालकर अनाप-शनाम बकना' कहतीं। भगवतशरण जी हर आधे घंटे में पानी माँगते। शायद भरा हुआ गिलास देखना उन्हें अच्छा लगता रहा हो। हम भाई-बहनों में से कोई जाकर उन्हें पानी देता। लगता था पानी देने का यह क्रम अंतहीन होगा, लेकिन कहाँ? जब हम टूटकर अलग हुए और लौटकर आए तो पता चला कि भगवतशरण जी के लिए

एक स्टील की गिलास तय कर दी गई है। वे दिनभर, जब चाहे, पानी के कंटेनर में से उसी तय गिलास में पानी लेते रहते हैं। अगले सुबह उस गिलास को उठाकर माँजकर पुनः स्थापित कर दिया जाता। उस पर एक जगह पिचके का निशान है। यही निशान पहचान है कि यह तय वाली गिलास है। इसमें कोई दूसरा पानी नहीं पीएगा। पीएगा, तो वह जाने, उन्हें क्या?

पहले जब होली पर गुझिया बनती तो गुझिया का आटा भगवतशरण जी सानते। बहुत देर और दम लगाकर जब आटा तैयार होता तो वह बड़ा सा गोला, ग्लोब जैसा लगता, जिसे भगवतशरण जी एक हाथ में उठाकर बच्चों को दिखाते। हम उसे छू लेने को उछलते थे, वे उसे और ऊँचा कर देते। कोई-कोई छू भी लेता। वह जीत जाता। रत्ना जी का दिखावटी गुस्सा शुरू होता - 'अभी गिर जाएगा तो सारी मेहनत बेकार हो जाएगी।'

सबसे छोटी लड़की बेलन के एक सिरे से उस ग्लोब में कई जगह छेद करने की कोशिश करती। छेद नहीं बनता। खाली निशान रह जाता।

'आप पृथ्वी के भीतर इस छोर से उस छोर तक जाना चाहते हैं। मुश्किल नहीं है।' भगवतशरण जी कहते।

वे कोई नुकीली चीज खोजने लगते। कोई चम्मच लाता। नहीं, नहीं। कोई कलछुल लाता। हाँ, हाँ। कलछुल के पीछे से ग्लोब के ठीक बीचों-बीच छेद बनाते हुए आखिर पृथ्वी को वश में कर लिया जाता। पूरी पृथ्वी बीच से चिरी हुई, कलछुल पर टँगी। खूब हँसी का हल्ला।

'कर दो गंदा पूरा आटा। पापा और भी बच्चा बन जाते हैं।' गुस्सा दिखाते-दिखाते हँस देतीं रत्ना जी।

पृथ्वीवासी चैतन्य। लाओ आटा। चलो, हटो सब लोग। गुझिया बेलना शुरू। चौके पर लंबी रोटी, फिर उसे गिलास से काटना। फिर उसमें सूजी मिला खोया भरना। किनारे को धीरे-धीरे पूरना - डिजाइन बनती हुई। खदबदाते तेल में हल्की भूरी, सुनहरी-खूबसूरत गुझिया।

'पापा, अबकी हम काटेंगे।'

ठीक है। सबका नंबर बारी-बारी।

अब कुमार स्वीट्स के यहाँ से रेडिमेड गुझिया मँगा ली जाती है। बच्चे लौटते हैं त्यौहारों पर, अपनी थकान उतारने के लिए। बहुत छोटी छुट्टियाँ और लंबी थकान।

बच्चे चाहते हैं कि माँ-बाप उनसे कहें कि वे कितने परेशान हैं, पैसे की कमी का रोना रोएँ। आखिर दुनिया में और माँ-बाप अपने बच्चों से कहते नहीं हैं? माँगते नहीं हैं? पर ये, न जाने कैसे प्राणी? हमें देने की तृप्ति से, बड़े और महान बन जाने के तोष से दूर रखना चाहते हैं! देने के लिए थैलों (बैंक) में भरा पैसा किसलिए रखा है हमने। आखिर इन पैसों की एवज में हमने अपना श्रम और समय बेच दिया है। और भगवतशरण जी हैं कि उठकर सिगड़ी सुलगाने चले जाते हैं। ऊषा कंपनी का बढ़िया ब्लोअर पड़ा रह जाता है। वे चाहते हैं हम सिगड़ी के पास बैठकर आग तापें। हम भी चाहते हैं, पर कब? समय तो हम बेचकर आए हैं। जरा-सा बैठों नहीं कि मोबाइल बज जाता है। मुझसे छोटी की तो और मुसीबत है - मीडिया की प्राइवेट नौकरी और गलाकाट प्रतिस्पर्धा। हाथ से मोबाइल छूटता ही नहीं। उससे छोटी पैसों के साथ फाइलों से भरा थैला भी ले आती है। न जाने कितने प्रोजेक्ट बनाने होते हैं उसे। पर बनाती क्या खाक है। जब देखो जाकर सो जाती है। आग तापे या सो ले बेचारी, आप बताइए, थोड़ी सी छुट्टी मिली है, फिर जाकर खटना है।

यही नहीं समझते दोनों प्राणी।

भाई पर प्रोफेशनल कोर्स का प्रेशर। छुट्टियों के लाले। जब मैं आती हूँ, वह नहीं आ पाता। जब वह आता है, हममें से कोई नहीं आ पाता। आता है तो सिगड़ी के पास बैठकर आग तापने की बजाय सो जाता है। रत्ना जी भी तब आग नहीं ताप पातीं। जाकर उसका पैर चाँपने लगती हैं। लड़का बेचारा - थका, हारा।

लड़का मुंबई चला गया प्रोफेशनल कोर्स करने। एक बार भी रत्ना जी या भगवतशरण जी के माथे पर बल नहीं पड़ा कि भला इतनी दूर पढ़ने जाने की क्या जरूरत? दोनों में से कोई उसे रोकने दीवार बनकर नहीं खड़ा हुआ। मगर लड़कियाँ? कानी कौड़ियाँ। जब बड़ी लड़की ने हाई स्कूल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की तो भगवतशरण जी और रत्ना जी से ज्यादा उत्साहित हो गए बगल मकान वाले मास्टर साहब। जिंदगी भर स्कूल में चित्रकला विषय पढ़ाते रहे, आज वक्त आया था कि वे अपनी प्रतिभा से किसी का मार्ग निर्देशन करें। दौड़े आए भगवतशरण जी के पास कि भाई जी फलाँ-फलाँ विश्वविद्यालय में बैचलर ऑफ आर्ट्स की पढ़ाई होती है - पाँच वर्षों का कोर्स, जो वे नहीं कर पाए थे, उनके बच्चे भी नहीं कर पाए थे, उनके विद्यार्थी भी नहीं कर पाए थे, फिर भी जिसे वे किसी को करते हुए देखना चाहते थे।

आनन-फानन में फार्म भरा गया। प्रवेश परीक्षा दी गई। फलाँ-फलाँ शहर में अपने रिश्तेदार भी हैं। लड़की की जिम्मेदारी माने लोकल गार्जियन। लिए-दिए अपनी बड़ी लड़की पहुँचे भगवतशरण जी विश्वविद्यालय की शरण में। यह कहना सरासर गलत होगा। वे पहुँचे रिश्तेदारों की शरण में। सबसे पहले अपने बड़े भाई क्षमानाथ जी के यहाँ। क्षमानाथ जी अपनी तिमंजिला इमारत की निचली मंजिल के एक कमरे में बैठे सत्तू के लड्डू खा रहे थे। लड्डू शुद्ध घी के थे। उनमें से हल्की-हल्की खुशबू आ रही थी। पहले जब भी कभी हम वहाँ जाते, वे ऐसे ही सुबह-सुबह शुद्ध घी वाले सत्तू के लड्डू खाते दिखते। हम बच्चे पहले झाँकते, फिर उनके सामने चले जाते, पर वे कभी नहीं कहते कि 'बच्चों लोगे?' हम जानते थे कि लड्डू हमारे लिए नहीं हैं। माँगने की हिम्मत किसी में नहीं थी। झपट लेने या चुरा लेने की हिम्मत भी किसी में नहीं थी।

भगवतशरण जी के साथ बड़ी लड़की ने भी झुककर उन्हें प्रणाम किया।

'कहो।' उनके मुखारविंद से फूटा।

सारा हाल सुनकर उनके माथे पर बल पड़ गए।

'बुचिया, अंदर जा।' उन्होंने आदेश दिया।

अंदर वाले कमरे में उनकी सबसे छोटी बेटी सरूपा जी (उम्र कोई पच्चीस बरस) बैठी मक्खन के साथ रोटी चबा रही थीं। रोटी रात की थी शायद और खूब तेल में तली हुई थी। कड़क थी और चबाने पर कड़-कड़ की आवाज आ रही थी। उन्होंने यूँ ही पूछ लिया - 'खइबू?'

'न!' बड़ी लड़की ने सिर हिलाया।

कुछ ही देर में भगवतशरण जी ने लड़की को बुलाया - 'चलो।'

लड़की के आते ही न जाने कहाँ से निकलकर एक छोटा झबरीला कुत्ता दौड़ा आया। क्षमानाथ जी के पैरों के इर्द-गिर्द पूँछ हिलाता घूमने लगा।

'चल रे भगत!' क्षमानाथ जी उस पर हाथ फेरते बोले।

भगवतशरण जी का चेहरा उतरा हुआ था। और उतर गया। उन्होंने चलने का आभास दिया।

'बचवन कुकुरवा का नाम भगत रखलै हैं। तू अपने पर न लिहा।'

यह कहते हुए क्षमानाथ जी ने अचानक अपनी लड्डूवाली कटोरी आगे कर दी - 'ला।'

यह लड़की के लिए था। लड़की को यह खासा अपमानजनक लगा। 'न' में सिर हिलाकर वह पिता के साथ गेट से बाहर हो गई।

इस तरह रिश्तेदारों से भरे उस शहर में एक के बाद दूसरे, दूसरे से तीसरे रिश्तेदारों की शरण में पहुँचते हुए भगवतशरण जी जान गए कि इसी विश्वविद्यालय में बड़के भइया के बड़के बबुआ की चौथी लड़की पढ़ने आई थी। बेचारों ने जिम्मेदारी भी ले ली थी, मगर नाक कटाकर गई लड़की। जमाना बड़ा खराब है। कौन लड़की कब प्रेगनेंट हो जाए, क्या पता? ऐसे में भला वे कैसे ले लें किसी की लड़की की जिम्मेदारी!

भगवतशरण जी निराश।

लड़की न हुई सोना-चाँदी हो गई।

लड़की न हुई, कंकड़-पत्थर हो गई।

विश्वविद्यालय प्रांगण के मंदिर में बड़ी लड़की को बैठाकर भगवतशरण जी ने सारा हाल सुनाया और कहा कि चलो लौट चलें अपने घर। यहाँ अकेले रहना खतरनाक है।

'चाहता था कि तुमलोग कुछ बन जाते।'

यह उन्होंने अपने अंतिम रूप से कहा।

'पापा! क्या हम रिश्तेदारों के भरोसे पढ़ेंगे?'

यह प्रश्न हवा में लहराया। भगवतशरण जी से टकराया। वे चौंके, घबड़ाए, टहलते रहे। फिर बोले - 'अभी नहीं। थोड़ा और समझदार हो जाओ। बारहवीं कर लो फिर यहीं आओ।'

'यह तय रहा।'

'हाँ। सौ प्रतिशत।'

भगवतशरण जी भावनाओं में बह गए। घर आकर परेशान हो उठे। देखा जाएगा उस वक्त, सोचकर वे फिर भी शांत थे, पर रत्ना जी! खराब जमाना है और यह तय किया गया है - सोच-सोचकर वे बहुत डरीं - बहुत। उन्होंने गालियाँ दीं रिश्तेदारों को, बहुत। फिर भी जो तय था, वह होने के लिए मचल रहा था।

भगवतशरण जी रोकना चाहते थे लड़कियों को। खराब जमाने की स्मृतियों से उनका ब्लड प्रेशर बढ़ गया था। वे ब्लड प्रेशर की दवा लेने लगे थे। लड़कियों के आगे तरह-तरह से जमाने की तस्वीर रखी भी थी उन्होंने। समझाया भी था। पर तब भी वे अपनी पिछली बात से मजबूर हो रहे थे। रत्ना जी रोकना चाहती थीं। उस रात उन्होंने खाना नहीं खाया था। यूँ आमरण अनशन भी कर सकती थीं, पर नहीं किया। भूख हड़ताल करके रह गईं। वे लो बी.पी. और डाइबिटीज एक साथ ले बैठीं। मुश्किल यह थी कि वे अकेली लड़की को तमाम-तमाम हिंसक वारदातों के बीच ही देख पाती थीं। अकेली लड़की का कोई और रूप बनाना उनके लिए आसान न था। वे डरती थीं। अपनी बेटियों को जमाने से बचाकर रखना चाहती थीं। पर क्या करें? आदमी ऐसे सोचे तो फिर सपने न देखे। उनकी राह में उन्हीं के कुछ सपने थे, जिन्हें वे अपने ही हाथ से सरकाकर अलग नहीं कर सकती थीं।

तो इतने-इतने तमाशों के बाद आखिरकार बड़ी लड़की निकली, अकेले। फिर उससे छोटी भी निकली, फिर सबसे छोटी।

शादी। न, न। बंधन-वंधन, संस्था-वंस्था - इस तरह हमने कभी नहीं सोचा। बस, इस शब्द के आते ही अहसास होता है जैसे कि भय के तमाम अँधेरे कोने सिमट आए हैं हमारे पास। यह शब्द हमें डराता है। पता नहीं कब से।

कुछ शब्द भय से बने होते हैं।

डर के पर्यायवाची।

अब क्या कहूँ - 'शादी' शब्द आया नहीं कि बिखरी हुई मूँगफली, टूटा हुआ काँच का गिलास और कील में फँसा मेजपोश का किनारा हमें उलझन में डाल देता है।

तो कुमार स्वीट्स के यहाँ से आई रेडीमेड गुझिया हम यह कहते हुए खा लेते कि 'क्या बढ़िया गुझिया बनाते थे पापा' या 'पापा कभी बनाइए गुझिया।'

'अच्छा, अच्छा।' भगवतशरण जी कहते थे।

वे अपनी जाँगरचोरी की बात दबा ले जाते।

हम कहते - 'हम आपके लिए एक दिन गुझिया बनाएँगे।'

या 'इससे बेहतर गुझिया हम आपके लिए ले आएँगे।' आदि, आदि। पर कब?

हम उनके साथ टहलने जाना चाहते हैं, पर हमें आलस आता है।

हम उनके साथ बाजार जाना चाहते हैं, पर हमें नींद आती है।

हम रत्ना जी को गाजर का हलुआ भूनने में मदद करना चाहते हैं, पर हमसे उठा नहीं जाता।

हम उनके साथ गपशप करना चाहते हैं, पर वे तय बातों से बाहर नहीं आते।

हम खीझते हैं, फिर बचते हैं।

व्यर्थ की लड़ाई।

हम अपनी जाँगरचोरी की बात सहन नहीं कर सकते।

हमारे पास सपने हैं। सपनों में ग्लोब घूमता है, कलछुल पर टँगी पृथ्वी नाचती है और सोंधी-सोंधी खुशबू आती है गर्म तली गुझिया की।

मन तुम काहे दुंद मचाए -

'ओ मिस्टर जॉन जला दे रोशनदान...' बड़ी मस्ती में भगवतशरण जी यही गाते और बताते कि कैसे विश्वविद्यालय में उनके साथ पढ़नेवाली रूसी लड़की यही गाना रूसी भाषा में गाती थी। एक हाथ कमर पर और एक हाथ दीपक लिए मुद्रा में बनाकर वह थिरकती थी। वे भी कुछ-कुछ वैसा थिरक कर दिखाते। सब हँसते। रत्ना जी भी। धीरे-धीरे भगवतशरण जी यही गाना गाते-गाते सामनेवाले मकान के बगल में बड़े बरामदे के उस खास कमरे में बैठने जाने लगे। मुझसे छोटी गवाह है कि रत्ना जी तब सीधे बोली थीं।

'गुड्डू के पापा, यह आपको शोभा नहीं देता।'

हम छोटे माने जाते, पर हमारा फिल्मी ज्ञान हमें रिश्तों की पहचान कराता। किसी को बताने की जरूरत नहीं होती। हम आँखों-आँखों में मुस्कराकर पड़ताल कर लिया करते। सो हमें भी यह अच्छा नहीं लगता। बल्कि बहुत बुरा लगता।

भगवतशरण जी चुप।

असल में सामनेवाले घर के बगल में लंबा बरामदा था, जिसे एक हलवाई ने बनवाया था और जिसमें एक-एक करके लाइन से लगभग छह कमरों के दरवाजे, खिड़कियाँ

थे। उन अकेले कमरों में प्रायः गाँव से पढ़ने आए लड़के या कुछ ऐसे ही कर्मचारी रहते थे। इन कमरों में टॉयलेट नहीं था। टॉयलेट के लिए इन्हें मोहल्ले से बहुत दूर जाना पड़ता। अगर कभी कोई अपने घर से बाहर खड़ा हो और इन कमरों के किसी व्यक्ति को टॉयलेट जाना पड़े, तो वह हाथ में पानी की एक बोतल पकड़े इतना अधिक सिर झुकाकर चलता कि पृथ्वी फटे तो उसमें समा जाए। हम छत पर से अक्सर इस दृश्य को देखते। बोतल लिए व्यक्ति का छत की तरफ देखने का कत्तई कोई सवाल नहीं।

हे प्रभु! कभी इन कमरों के लोगों को दस्त न लगे।

तो उन्हीं कमरों में से एक में अचानक एक दिन एक महिला दिखी। नाटे कद की सफेद, चिकनी। माथे पर छोटी सी बिंदी, माँग में खूब सिंदूर। साथ में तीन छोटे बच्चे-गच्चे, पच्चे, रोते धोते। दिनभर कोई आदमी नहीं दिखा। रात में एक आदमी आया - छह फुट लंबा, बहुत काला, मोटी बड़ी सी नाक, चौड़ा बेढंगा चेहरा। हम जान भी नहीं पाते कि एक ऐसा आदमी इस कमरे में आया है, अगर उस दिन होलिकादहन न होता और अगर उस दिन मोहल्ले के कुत्ते उस पर मेहरबान न हुए होते। हुआ यह कि जैसे ही वह हाथ में बड़ा सा लिफाफा पकड़े, मोहल्ले की गली में घुसा, कुत्तों ने उसे घेरकर भौंकना शुरू कर दिया। उसने अपने हाथ में पकड़े लिफाफे को, जिस पर तेल के धब्बे दिख रहे थे, और ऊपर उठाने की कोशिश की। इस कोशिश में उसका हाथ काँपा और तेल के धब्बे वाला बड़ा सा लिफाफा 'धम्म' से गिर गया। उसमें से उछलकर कुछ समोसे निकले और बिखर गए। तभी हमें भी पता चला कि उस लिफाफे में समोसे थे। वह इतना पीये हुए था कि ठीक से चल भी नहीं पा रहा था। समोसे गिर जाने से वह डर गया और वहीं एक दीवार से चिपककर खड़ा हो गया। थोड़ी ही देर में अपने दाएँ बाजू से माथे को ढककर धीरे-धीरे रोने लगा। उस दिन लोक होलिकादहन देखने मोहल्ले की गली से आगे सड़क पार के मैदान मे जा रहे थे। हम भी। उन लोगों ने ही कहा - 'बहुत पीये है।'

तब पीये हुए आदमी का असली चित्र हमारे दिमाग ने फीड कर लिया।

रोते हुए उस आदमी को कई लोगों ने इकट्ठा होकर पकड़ा। वह बिना प्रतिरोध, चुपचाप पकड़ में आ गया। लोग उसे, उसके दरवाजे तक ले गए।

चमकती हुई उसी स्त्री ने दरवाजा खोला और बाँह से धीरे से पकड़कर पीये हुए उस आदमी को अंदर खींच लिया।

'कौन है रे ये?'

'तेरा आदमी है?'

'साला इतनी पीएगा तो घर गृहस्थी क्या चलाएगा?'

'बच्चे भी हैं आपके। भला बताइए!'

'समझाइए इन्हें।'

'क्या करते हैं ये?'

'साला बड़ा पीये है।'

'हे, समोसवा सकल वहीं गिर गया। बताइ दे रे।'

बड़े, छोटे, बुजुर्ग सभी ने मिलकर बहुत कुछ पूछना, कहना चाहा।

अनुत्तरित सब।

'कितनी सुंदर मेहर है रे।'

'लकी मैन...'

'बाप रे, बंदर के हाथ नारियल।'

'ब्याहता लगे है?'

'रंडी तो नहीं बसा दिया साले हलवाई ने...'

वगैरह... वगैरह... सब बिखर गए।

तो यह नए पी कर आनेवाले आदमी दिन में नदारद। कभी-कभी बहुत सुबह हाथ में बोतल लिए जाते दिखते। बच्चे भी। वह औरत कब बोतल लिए जाती थी, यह ट्रेस कर पाना बड़ा मुश्किल था। सबके लिए न रहा हो, हमारे लिए था। हमें लगता जैसे वह बोतल लिए कभी नहीं जाती। शायद उसे जरूरत ही नहीं पड़ती। या कि इतनी रात में जाती है, जब कोई नहीं जागता या वह हवा में तैरकर चली जाती है, किसी को पता ही नहीं चलता।

हमारे पास सुंदर स्त्री की जितनी छवियाँ हैं, किसी में भी हाथ में लोटा या बोतल थामे वीराने की खोज और निवृत्त होने की हड़बड़ी नहीं है। आश्चर्य!

उस नए आए पियक्कड़ आदमी को हमने मिलकर 'मिस्टर न्यू' नाम दिया। उसका असली नाम हमें इतनी अधिक देर में पता चला कि वह तब तक हमारे लिए अर्थहीन हो चुका था। उसका नाम मिस्टर न्यू कर देने के बाद उस स्त्री को हमने मिसेज न्यू के नाम से जान लिया। मिसेज न्यू कभी-कभी बरामदे में खड़ी दिखतीं। मोहल्ले का कोई बड़ा व्यक्ति अगर उधर से गुजरता तो पहचान न होने पर भी उसे नमस्ते करतीं। अगल-बगल वाले कमरों के लड़कों से हँसती-बोलतीं। मोहल्ले की औरतें उनसे बचतीं। वह किसी के घर नहीं जातीं। धीरे-धीरे मोहल्ले के बड़े-बुजुर्ग रुककर उनसे बात करने लगे। पहलू यूँ ही हाल-चाल, फिर कुछ गपशप। फिर थोड़ी अंतरंगता। फिर चाय-पानी। मिसेज न्यू चाय बनाने अंदर जातीं। लोग बाहर खड़े रहते। बाहर खड़े-खड़े ही चाय पीते। फिर झिझक टूटी। वे चाय बनाने अंदर जातीं। लोग भी अंदर जाने लगे।

एक कमरे में तीन बच्चों के साब बहुत घचपच मची रहती। कहने का तात्पर्य कमरा गंदा होता। पर यह महान पुरुषों का प्रदेश, वे गंदे साफ की परवाह कहाँ करते हैं!

कैसे हुआ यह सब**?**

मोहल्ले की औरतें हतप्रभ**!**

उनके मर्द ऐसे खुलेआम उसके यहाँ जाकर बैठ जाते हैं**!**

तो भगवतशरण जी भी उन्हीं महान पुरुषों में शामिल थे। न जाने किस-किसके दुख से द्रवित। वे आते-जाते कभी-कभी वहाँ ठहर जाते। पहले बाहर खड़े होकर फिर भीतर जाकर चाय पीते। कभी-कभार कोई उसको फल या सब्जियाँ ला देता या फिर बच्चे की टूट गई दूध की बोतल फिंकवा देता और उसे नई बोतल की खुशी से भर देता। ऐसा सब करते। लड़के भी, बड़े भी, बुजुर्ग भी। सब उसके साथी।

बस औरतें अलग। बेचैन।

यह अचानक हुआ। शाम का वक्त था। भगवतशरण जी ने झोला लाकर रखा था कि अचानक मुड़कर उन्हें मेन दरवाजे तक जाना पड़ा। कमबख्त दूधवाला उसी वक्त 'बाबूजी' 'बाबूजी' कहकर पुकारने लगा। उसका हिसाब बाकी था। वे पलटकर गए और उससे भिड़ने लगे। इतने में रत्ना जी ने झोला उठा लिया। बिना पूछे ही उसमें से सामान निकालकर सरियाने लगीं। सबसे नीचे दबा था आधा किलो मूँगफली का ठोंगा। यह किसलिए भला? उन्होंने मूँगफली निकाली और 'गुड्डू' पुकारते हुए भाई को थमा दी - 'बहनों को भी थोड़ा-थोड़ा दे देना।' वे बोलीं। भाई पूरा ठोंगा लेकर भागा तो

हम तीनों उसके पीछे झपटे। वह देना नहीं चाहता था। हम लिए बिना नहीं रह सकते थे। इसी छीना-झपटी में कुछ मूँगफली छिटककर गिर गई। तब तक भगवतशरण जी पलट पड़े। यह दृश्य देखते ही बिगड़े। लगभग दौड़कर भाई तक आए। खींचकर उसे दो झापड़ मारा। हमें एक-एक।

'सालों! तुम लोगों के लिए नहीं है।' वे चीखे।

भाई के साथ स्वर मिलाकर हम तीनों भी जोर-जोर से रोने लगे। इतने में रसोई से ही रत्ना जी बहुत साफ, धीमे और सधे स्वर में बोली - 'हमारे लिए नहीं तो किसके लिए है?'

इस धीमे स्वर को बाहर का कोई नहीं सुन सकता और भीतर का? जिसे सुनना है, सुन ही लेगा।

'चुप रहो। मन चढ़ा रखा है इन कमबख्तों का। किसने छुआ मेरा झोला?'

गुस्से से तमतमाते भगवतशरण जी आगे बढ़े। रत्ना जी की तरफ। रत्ना जी रसोई से निकलकर बैठक के दरवाजे तक चली आईं। वे अपना हाथ झाड़ रही थीं। तभी बैठक में लगे मेज का मेजपोश भगवतशरण जी के पाँव से दब गया। मेजपोश गिरा नहीं, बल्कि उसका एक किनारा मेज से निकली कील में फँसकर चें बोल गया। मेज भी हिलकर रह गई। भगवतशरण जी गिरते-गिरते बचे। उनका एक हाथ बचाव में मेज पर सरका और मेज पर रखा काँच का गिलास जोर से नीचे गिरकर टुकड़ों में नाचा। यह सब कुछ इतनी तेजी से हुआ कि जो जहाँ था, वहीं ठिठक गया। रत्ना जी ने आगे बढ़कर भाई के हाथों से मूँगफली का ठोंगा छीनकर फेंकना चाहा, पर भाई ने जिद से ऐंठकर ठोंगा नहीं छोड़ा। तब रत्ना जी उसे हल्का सा धक्का देकर, उसी आवेग में रसोई की तरफ लौटने लगीं। उन्हें लौटते देख भाई को न जाने क्या सूझा कि उसने 'झम्म' से ठोंगा भगवतशरण जी की ओर फेंका, जो उन्हें सीधा न लगकर दीवार पर उल्टा लगा और बैठक में सारी मूँगफली बिखर गई।

यह 'झम्म' की आवाज जो मूँगफली के साथ बिखर गई थी, न रत्ना जी की थी, न भगवतशरण जी की। यह स्वतंत्रता और अधिकार की सम्मिलित आवाज थी। जो हम सबके भीतर ठीक उसी वक्त बिखरी थी। यह भी कितने बाद में पता चला।

हम चारों रोना भूलकर अपलक देखने लगे। भगवतशरण जी तड़पकर रह गए, उनके मुँह से एक शब्द नहीं फूटा। रत्ना जी भी पीछे मुड़ीं और तड़पकर खड़ी हो गईं।

वहाँ छूट गई रत्ना जी की आँख।

वहाँ छूट गई भगवतशरण की आँख।

वहाँ हम चारों की आँख भी छूट गई।

रात आई और सबके सपनों में मूँगफली आई। किसी ने खाया, कोई नहीं खा पाया। रत्ना जी के स्वप्न में परियाँ भी आईं - भगवतशरण जी को घेरे हुए। भगवतशरण जी आहिस्ता से मूँगफली तोड़ते और अपनी अँगुलियों में फँसाकर उन्हें खिलाते। एक परी के बड़े-बड़े दाँत दिखे। उसने अपने दाँत से उनकी दो अँगुलियों को पकड़ लिया। दौड़कर रत्ना जी पहुँचीं और भगवतशरण जी की अँगुलियों को उसके दाँत से मुक्त कराने लगीं। वे दंग। जितना ही वे मुक्त कराना चाहतीं, भगवतशरण जी उतना ही ज्यादा अँगुलियाँ उसे खिला देना चाह रहे हैं। घुसाए जा रहे हैं उसके मुँह में। वे एक हाथ से रत्ना जी को हटाते हैं और दूसरा हाथ उसके मुँह में डालते जाते हैं। रत्ना जी चौंककर उठ गईं। हे भगवान! हे भगवान! वे बड़बड़ाईं। सुबह से पागल-पागल सी घूमती रहीं। खाना तक ठीक से नहीं बन पाया। दोपहर बाद हम तीनों लड़कियों को भेजकर उन्होंने लता आंटी को बुलवाया। फिर हमें दूर जाकर खेलने का आदेश देकर वे लता आंटी से अस्पष्ट-सा कुछ बतियाने लगीं। हम दूर नहीं भागे। क्यों भागते? रहस्यमयी बातों को जानने का आनंद इस दुनिया का सबसे बड़ा आनंद है। छोटी ने कान लगाकर सुना, फिर हमें सुनाया। इस तरह यह स्वप्न वृतांत और अस्पष्ट होकर हम तक पहुँचा। यह पहले ही बता चुकी हूँ कि उस आठ-दस की उम्र तक सेक्स संबंधों के बारे में हमारा ज्ञान फिल्मों पर आधारित था। हम नायक नायिका को लिपटते-चूमते देख समझ सकते थे - इतने को ही बहुत बुरा और निकृष्ट मानते थे। यहाँ तक कि नायिका के गर्भवती हो जाने का कारण भी यही लिपटा-लिपटी, चूमा-चूमी लगता।

खैर, इस क्रमशः आते रहनेवाले स्वप्न के बावजूद मिसेज न्यू बरामदे में खड़ी दिखतीं। उनके बरामदे के सामने से गुजरनेवाली औरतों को वह उसी प्यार भरे अंदाज में नमस्ते करतीं। पर औरतें नहीं रुकती। उनके नमस्ते का जवाब देकर आगे बढ़ जातीं। मिसेज न्यू की जगह यदि मिस्टर न्यू या कोई और पुरुष उन्हें नमस्ते करके चाय के लिए रोकता, वे तब भी नहीं रुकतीं। औरतें आखिर औरतें थीं। दुनिया भर की मान-मर्यादा उनके जिम्मे थी। इस मान-मर्यादा को ढोते-ढोते उनके कंधे दुखते थे, घुटनों में गठिया, आँखों में मोतियाबिंद हो जाता था। वे फिर भी ढोती थीं। ज्यादातर तो जानतीं भी नहीं थी कि वे क्या ढो रही हैं? बस ढोना था, इसलिए ढोती थीं। भला

कैसे रुकतीं वे? उनके मालिकों ने कहा था - 'ऐसे ही है वह। आने-जाने की जरूरत नहीं।'

यह अनुशासन औरतों के लिए था और इस अनुशासन को औरतें मालिकों को भी पहनाना चाहती थीं। सारी गड़बड़ यही थी। औरतें जो कुछ ढो रही थीं, उस बोझ को ढोते-ढोते अचानक बेसिर-पैर का सवाल कर बैठी थीं कि यही अनुशासन मालिकों पर भी लागू होना चाहिए। आखिर वे कौन-सी बातें हैं, जो मिसेज न्यू से किए बिना नहीं रहा जा सकता? आखिर चाय पीने उनके घर रुकने की क्या जरूरत? आखिर वह कौन सी वजह है, जो उनके (मिसेज न्यू के) साथ होते ही इन्हें हँसने के लिए प्रेरित करती है? गली या बरामदे में खड़े कैसे हँस रहे होते हैं ये लोग? यह सब उन्हें भी शोभा नहीं देता... आदि, आदि।

हालाँकि औरतें साँस रोके खड़ी थीं कि कब वह मोहल्ले से जाए तो वे साँस लें।

पर उनका भरोसा - ?

फिल इन द ब्लैंक -

वर्षों बीत गए। आज भी यदि शाम छह बजे के बाद उस मकान पर फोन करो तो पता चलता है कि दो बूढ़े अपना दुख बाँट रहे हैं।

कौन दो बूढ़े?

एक भगवतशरण जी और दूसरे? हैरत में न पड़ें! यह दूसरी रत्ना जी नहीं हैं।

सामने के मकान के पुष्प जी हैं।

पुष्प जी कविता लिखते हैं। पहले कम लिखते थे, नौकरी से अवकाश प्राप्ति के बाद ज्यादा लिखते हैं। जीवन में तमाम परेशानियाँ और कवि यश प्राप्त न कर पाने का दुख भी उन्हें पुष्प बने रहने से नहीं रोक पाया। पुष्प जी आशु कवि हैं। जब-तब कविता रच देते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल अगर उनसे मिलते तो अपने 'कविता क्या है' वाले निबंध पर थोड़ा आशंकित होकर शायद पुनर्विचार करते। लोग उन्हें कवि मानते हैं। शुक्ल जी चाहे न मानें। कोई भावदशा वगैरह की स्थिति उन्हें नहीं चाहिए। आप बताइए तो सही कि कविता किस विषय पर लिखनी है और अगले दो मिनट बाद उनसे कविता ले जाइए। जाइए अपने स्कूल, कॉलेज, दफ्तर में सुना आइए। हाँ, बस एक बात का ध्यान रहे कि कविता बोलते समय उनके नाम का उल्लेख कर दिया

जाए। हालाँकि वे वहाँ कोई जाँचने नहीं आ रहे हैं कि आपने सच में उनका नाम लिया भी है या नहीं? या कि आपने उनकी जगह अपना ही नाम जोड़ दिया है।

बचपन में हमें यह एक बड़ी सुविधा मिली हुई थी। पंद्रह अगस्त, छब्बीस जनवरी, दो अक्टूबर... इस तरह का कुछ हो या मेला, ठेला, कौमी एकता सप्ताह, अंत्याक्षरी... कुछ भी। कविताएँ आपके हाथ में, ले जाकर पूरे आत्मविश्वास से सुना आइए और स्कूल के सबसे एक्टिव बच्चों में शामिल हो जाइए।

'दो बूढ़ों को आपस में बतियाना ही चाहिए' इस तर्ज पर सामने से निकलकर पुष्प जी इधर आ जाते हैं। वे रोते हैं, हँसते हैं। इधर भगवतशरण जी जब बहुत देर होने लगती है तो उनकी बात सुनते-सुनते सो जाते हैं। कभी-कभी यह भी होता है कि वे मूड में होते हैं और अपनी कहानियाँ लेकर बैठ जाते हैं। फिर नहीं सुनते सामने वाले का कुछ भी। जी भरकर सुनाते हैं, चाहे सामनेवाला उँघे या सो जाए। पुष्प जी बीच-बीच में हरिद्वार चले जाते हैं। उनके लड़के बताते हैं कि माँ के मरने के बाद से यह हरिद्वार जाने का दौरा उन पर पड़ता है। ऐसे समय में बगल वाले मास्टर साहब फिल इन द ब्लैंक का काम करते हैं। खैर...

बैठक में भगवतशरण जी पुष्प जी से बतिया रहे हैं।

बैठक क्या है, दुख की नदी है इस समय।

रत्ना जी! दुख की उस नदी से दूर इधर क्या करती रहती हैं?

ऊबती नहीं हैं?

किसी बूढ़ी औरत से बतियाने जाइए।